♦ पञ्चम अध्याय ♦

# प्रबन्धन विविध आयाम

## विषयावतरण

- आर्थिक प्रबन्धन
  - कृषि
  - पशुपालन
  - यातायात
  - शिल्प एवम् उद्योग

# ♦ पंचम अध्याय ♦

# प्रबन्धन विविध आयाम

## आर्थिक प्रबन्धन

**पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्**

**द्रधीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।**

**ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा**

**ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः।।**[219]

'अर्थ' के विषय में वैदिक ऋषियों के विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं। उनकी चिन्तन शैली परिष्कृत तथा निर्लिप्त थी, साथ ही वे धन की नश्वरता तथा धन के महत्त्व से भलीभाँति परिचित थे। लक्ष्मी की चञ्चलता के विषय में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि धन रथ–चक्र की भांति आता जाता रहता है, कभी किसी एक व्यक्ति के पास स्थिर नहीं रहता।

वैदिक परम्परा में मानव अस्तित्व हेतु चार प्रमुख जीवन मूल्यों को उद्धृत किया गया है–धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष, अस्तु 'अर्थ' की गणना पुरूषार्थ चतुष्टय में की गई है, धन के प्रति, अर्थार्जन के प्रति तत्कालीन आर्यों का दृष्टिकोण व्यापक था। आर्थिक प्रबन्धन की अवधारणा के विषय में वैदिक ऋषियों की आर्थिक अवधारणाओं का अध्ययन करना प्रासङ्गिक है। वैदिक काल से अद्य पर्यन्त आर्थिक प्रबन्धन जनसंख्या के अधिकतम कल्याण और मानव जीवन में भौतिक सुखों में वृद्धि की ओर केन्द्रित है। वैदिक परम्परा एवम् सभ्यता निश्चित रूप से आर्थिक समृद्धि की ओर अग्रसर रही, वर्तमान सन्दर्भों में प्रो. अमर्त्य सेन के विचारों के अनुसार मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं की

---

[219] ऋग्वेद 10.117.5

पूर्ति शिक्षा, स्वास्थ्य और नैतिक मूल्य के मानदण्डों के आधार पर जीवन की गुणवत्ता के स्तर को ऊँचा उठाना ही आर्थिक प्रबन्धन है।

यदि आज के भूमण्डलीय जीवन में 'अर्थ' को जनसंख्या के अधिकतम कल्याण (सुख) से सम्बद्ध किया जाय तो निम्न क्षेत्र प्रमुख हैं–

- शिक्षा
- स्वास्थ्य
- भोजन
- आवास
- रोजगार
- यातायात
- संचार
- जीवनशैली
- उपभोक्ता मानस
- पर्यावरणीय सुविधाओं में वृद्धि इत्यादि।

वर्तमान आर्थिक समृद्धि उपर्युक्त सभी मापों पर मूल्यांकित की जाती है। व्यक्ति एवम् समाज की सामान्य गतिविधियों का संचालन 'अर्थ' के बिना असम्भव है।

वैदिक आर्यों ने एक सुखी एवम् सन्तुष्ट जीवन के लिए अर्थ के महत्त्व को कुछ नियमों एवम् सीमितताओं के अन्तर्गत स्वीकार किया था।

वैदिककालीन मानव समाज में माँग व पूर्ति के सिद्धान्त की मान्यताओं को तत्कालीन व्यवस्थाओं में भी स्वीकार किया गया था, क्योंकि वैदिक आर्थिक चिन्तन में स्वालम्बन व श्रम को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है–

**न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।**[220]

नैतिक मूल्यों के चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित आर्य परम्परा कल्याणोन्मुखी एवम् व्यक्तिगत लाभ या स्वार्थ से परे एकात्म की भावना से ओतप्रोत थी। अर्थार्जन एक पवित्र मार्ग के रूप में स्वीकार्य था जो अन्य पुरूषार्थों की सिद्धि में सहायक होता था। पापकर्म अथवा दुराचार द्वारा अर्जित धन को वेदों में स्वीकृति नहीं दी गई है। वैदिक ऋषियों के अनुसार अकल्याणकारी मार्ग द्वारा अर्जित धन सदैव पतन की ओर ले जाता है। यही भावना 'अर्थ' के सन्दर्भ में स्थान–स्थान पर वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होती है–

**क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं दक्षिणेन आ संगृभाय।**[221]

अर्थात् हे ईश्वर तेजस्वी, विलक्षण और ग्रहण करने योग्य धन हमें दाहिने हाथ से प्रदान करें। सामवेद के अग्नेय काण्ड में प्रकाशित सुभाषित में भी ऐसे धन की अभिलाषा की गई है जो यशवर्धन करे–

**सुनीतिः पुरूस्पृहं सुयशस्तरं न रास्व।**[222]

अर्थात् उत्तम नीति मार्ग से मिलने वाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित उत्तम यश को बढ़ाने वाला धन हमें प्रदान करें।

उपर्युक्त सूक्तियाँ धन की आवश्यकता एवम् वांछनीयता को सिद्ध करती है। आवश्यकता तो मात्र इतनी है कि धन साधनरूप होकर मानव मात्र का कल्याण करने वाला हो तथा आत्मा को मोक्ष मार्ग की ओर ले जाने वाला हो।

---

[220] ऋग्वेद, 4.33.11
[221] सामवेद 167
[222] सामवेद 8.1

गृहस्थाश्रमधर्म का पालन करने वाले प्रायः सभी गृहस्थों के लिए धन की आवश्यकता सर्व विदित है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन सुचारुरूप से करनेके लिए धन की महती आवश्यकता होती है। अर्थार्जन जीवन में सम्बलरूप होता है। अग्नि को आहूति प्रदान करते हुए भी इस प्रकार की अभिलाषा की जाती है कि–

**अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो।**

**प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम्।।**[223]

हे अग्ने! बलवर्धक धन हमें भरपूर प्रदान करें। हे निर्बाध गति वाले अग्ने! प्रशंसनीय धन मिलने के मार्ग को हमारे लिए प्रकाशित कर उसी प्रकार अन्न प्राप्ति के बलवर्धन के मार्ग दिखा। आदर्श वैदिक अर्थव्यवस्था को वर्तमान आर्थिक प्रबन्धकीय अवधारणाओं से सम्बद्ध किया जा सकता है। वैदिक अर्थ व्यवस्था एक ऐसी अर्थ व्यवस्था के रूप में अद्य पर्यन्त जानी जाती है जो उपलब्ध संसाधनों के समुचित उपयोग द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करती है।

ऋग्वेद में क्रय का मूलाधार 'विनिमय' को ही माना गया है। जिन लोगों ने धन को छिपाने का प्रयत्न किया उन्हें 'पणि' कहा गया। उन्हें शापित भी किया गया तथा उनके लिए वरुण द्वारा दण्ड का विधान भी है। धन के पाप रहित अर्जन की भावना के साथ–साथ स्वावलम्बी जीवन को भी रेखांकित किया गया है।

वैदिक अर्थव्यवस्था को मुख्यतः निम्न आधारों पर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

- कृषि
- पशुपालन
- यातायात
- शिल्प एवम् उद्योग

**कृषि प्रबन्धन**

[223] सामवेद 8.1

वैदिक काल में आर्यों को कृषि कला के ज्ञाता व कृषि कार्य में निपुण माना गया है। बीजारोपण, हलचालन, फसल उत्पादन, फसल विक्रय इत्यादि शब्दों के माध्यम से कृषि व्यवसाय की तत्कालीन व्यवस्था आधुनिक प्रणाली के समान सुनियोजित थी–

**तालिका**

**कृषि व्यवसाय में प्रचलित वैदिक शब्दावली[224]**

| वैदिक शब्दावली | अर्थ |
|---|---|
| लाङ्गल | हल |
| बृक | गोबरखाद |
| अवत | कुँआ |
| उर्दर | अनाज मापक यंत्र |
| किनांश | हलवाहा |
| उर्वरा | जुता हुआ खेत |

वैदिककालीन जनसमुदाय इस तथ्य से भलीभाँति परिचित था कि यदि फसलों को नुकसान हुआ जैसे प्राकृतिक आपदाओं यथा सूखा, अतिवृष्टि अथवा जंगली पशुपक्षियों ने फसलों पर आक्रमण कर उन्हें क्षति पहुँचायी तो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था तत्काल प्रभावित होगी।

वैदिककालीन भारतीय संस्कृति आर्थिक समृद्धि से परिपूर्ण थी। तत्कालीन समाज प्रकृति से पूर्णरूपेण संयुक्त था। आशातीत फसलों के उत्पादन हेतु प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है।

हल को वृषभ द्वारा खींचा जाना, गोबर से तैयार प्राकृतिक खाद, खेतों में कृत्रिम नहरों के माध्यम से सिंचाई कार्य, अन्न खेतों में पक जाने पर उसे एकत्र कर शकटों' में भरकर लाया जाना इत्यादि विषयक वर्णन प्राप्त होता है। ऊर्वरा भूमि को ःअप्नस्वती' कहा जाता था।[225]

वैदिककालीन कृषि व्यवस्था ऋतु आधारित थी। यही कारण है कि समस्त प्राकृतिक तत्वों की देवरूप में आराधना की गई है। आधुनिक कृषि व्यवस्था तथा वैदिक कृषि व्यवस्था दोनों ही मानसून

[224] स्रोत– वैदिक साहित्य के आधार पर सङ्कलित
[225] ऋग्वेद, 1.127.6

पर निर्भर रही है। ऋग्वेद के दशम् मण्डल में ऋषि स्पष्टतः कृषि के महत्त्व की चर्चा करते हैं, साथ ही कृषि द्वारा प्राप्त धन की सार्थकता को भी सिद्ध किया है–

**अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः**

**तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः।**

अर्थात् हे कितव! तू जूआँ मत खेल, कृषि कर, उससे तुझे जो धन प्राप्त हो उसी से संतोष कर।

प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सातवलेकर कृषि के विषय में कहते हैं कि आदिम काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार कृषि ही है तथा भारतीय जनमानस में इसके प्रति विशिष्ट सम्मानजनक दृष्टिकोण रहा है। विकास को प्राप्त होने वाली शक्ति मनुष्यमात्र को धान्यरूप में प्राप्त है। वेदों के अनुसार धान्यादि के प्रति जड़ दृष्टि नहीं अपितु उस जीवनदायिनी शक्ति के प्रति सम्मान की भावना ही अभीष्ट है। यही कारण है कि वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र मनुष्य को यही प्रेरणा प्रदान की गई है कि धान्यादि उत्पन्न करें तथा उसका सेवन करें–

**सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् धीरा देवेषु सुम्नया।।67।।**

**युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा**

**असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्कमेयात्।।68।।**

**शुनम् सुफाला विकृषन्तु भूमिम् शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः शुनासीरा**

**हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मे।।69।।**

**घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वेर्देवैरनुमता मरुद्भिः ऊर्जस्वती पयसा**

**पिन्वमानास्मान्सीते पयसाभ्याववृत्स्व।।70।।**

**लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवम् सोमपित्सरु तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं**

**प्रस्थावद्रथवाहणं।।71।।**

**कामं कामदुधे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य**

**ओषधीभ्यः।।72।।**

**विमुच्यध्वमघ्नाया देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य ज्योतिरापाम।।73।।**

**सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा अरुणीभिः सजोषसावश्विना दम्सोभिः सजूः सूर एतशेन**

**सजूर्वेश्वानर इडया धृतेन स्वाहा।।74।।**[226]

आर्थिक समृद्धि हेतु कृषि एक उद्योग का ही रूप ले चुका था, जिसके सफलतापूर्वक निष्पादन हेतु पुष्ट अन्नोत्पादन तथा वर्षादि के लिए विभिन्न देवों की आराधना के भी अनेकानेक उद्धरण वेदों में प्राप्त होते हैं। अन्न वपन से लेकर धान्य सञ्चय पर्यन्त कृषि कार्य के प्रत्येक सोपान हेतु विभिन्न मन्त्रों का प्रणयन शुक्ल यजुर्वेद में प्राप्त होता है।

**पशुपालन**

वैदिककालीन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कृषि के अतिरिक्त अन्य प्रमुख व्यवसाय 'पशुपालन' भी था। पशुसम्पदा को अत्यधिक ममत्व व सम्मान के साथ पूजा जाता था। कृषि कार्य एवम् यातायात हेतु उपयोग में आने वाले पशुओं, दुधारू पशुओं आदि का उल्लेख भी वेदों में प्राप्त होता है। वैदिक कालीन कृषि व्यवस्था हेतु पशुधन मूल स्तम्भ के रूप में सहायक थे। कृषि क्षेत्र में अहिंसात्मक प्रवृत्तियों की प्रधानता को परिलक्षित करने के उद्देश्य से ही बैलों को खेत जोतते समय अत्यधिक प्रताड़ित न करना, गाय, भैंस, घोड़ा आदि को न मारना तथा उनके मूक प्राणी होने का अनुचित लाभ उठाकर स्वार्थ पूर्ति हेतु उनका शोषण करना सभी कार्यों को पाप की श्रेणी में रख दण्डनीय कहा गया है।

वर्तमान आर्थिक प्रबन्धकीय व्यवस्था में पशुपालन एक व्यवसाय तो है किन्तु मनुष्य अत्यधिक स्वार्थी व भावनाशून्य होता जा रहा है कि पशुओं को उनके माँस के विक्रय के उद्देश्य से पालता है।

---

[226] शुक्ल यजुर्वेद, 12.67–74

दुधारू पशुओं पर कृत्रिम रासायनिक टीकों का उपयोग अधिक दुग्ध उत्पादन के लिए किया जाता है किन्तु इससे उन मूक प्राणियों को होने वाली हानि के विषय में सोचने तक का समय व भावना दोनों ही मनुष्य में नष्टप्रायः सी हो रही है।

वैदिक गृहस्थ प्रायः गौ, भेड़, बकरी, घोड़ा, वृषभ इत्यादि पालते थे। चारों वेदों में गौ का अत्यधिक माहात्म्य वर्णित है। ऋग्वेद में तो एक पूरा सूक्त गौ सूक्त के रूप में प्रणीत है–

**माता रूद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यनाममृतस्य नाभिः।**[227]

अर्थात् गौ एकादश रूद्रों की माता, अष्ट वसुओं की कन्या और द्वादश आदित्यों की बहन है, जो कि अमृत रूप दुग्ध को प्रदान करने वाली है। उपर्युक्त मन्त्र से हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि तत्कालीन ऋषि दूध तथा उससे निर्मित पदार्थों द्वारा मानवजाति को प्राप्त लाभों के विषय में परिचित थे। वैदिक वाङ्मय में गौ की महिमा को वर्णित किया गया है, कहा गया है कि गौ साक्षात् ईश्वर का ही स्वरूप है, जहाँ गौ का निवास होता है वहाँ सदैव सुख व शान्ति का वास होता है–

**गां मा हिंसीरदिती विराजम्।**[228]

ऋग्वेद में वर्णित है कि पुरोहित वश ने राजा पृथुश्रवा से सत्तर हजार घोड़ों, दो हजार ऊँटों, काले रंग की एक हजार घाड़ियों और तीन अंगों में शुभ्र दस हजार गायों को दान स्वरूप प्राप्त किया था।

वैदिक वाङ्मय में वर्णन है कि तत्कालीन आर्यों ने हाथी जैसे बलशाली पशु पर भी अपना वर्चस्व स्थापित कर उसे पालतू बना लिया था। प्राप्त वर्णनानुसार मतंग ऋषि ने हाथी को पालतू बनाने का कार्य सर्वप्रथम किया था, अतः हाथी का एक नाम मतंग भी हुआ। गदहे एवम् कुत्तों का उपयोग भी तत्कालीन व्यवस्था में पालतू पशु के रूप में किया जाता था।

---

[227] ऋग्वेद, 8.101.15
[228] यजुर्वेद, 13.43

अश्विनी कुमारों का रथ गदहे खींचते थे।[229] घोड़े चढ़ने, रथ में जोतने, हल खींचने और भारवहन करने के उपयोग में आते थे। इस प्रकार प्रायः सभी पालतू पशुओं का वर्णन वैदिक वाङ्मय में प्राप्त है। पशुपालन से सम्बद्ध विभिन्न शब्दों का प्रयोग निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

**तालिका**

**पशुपालन में प्रचलित वैदिक शब्दावली[230]**

| वैदिक शब्दावली | अर्थ |
|---|---|
| गत्यति | चरागाह |
| शुन्ध्यव | ऊन |
| गौ | गाय |
| उष्ट्र | ऊँट |
| हस्तिन्, गज, मतंग, सुक्तदन्त | हाथी |
| वृषभ, वाहाः | बैल |
| वाजिन, अश्व | घोड़ा |
| गर्दभ | गदहा |
| गोष्ठ | गोशाला |

पशुपालन एक उद्योग के साथ–साथ अनेक लोगों को रोजगार भी प्रदान करता था। पशुओं की देखरेख करने हेतु, धान को खेतों से मण्डियों तक पहुँचाने हेतु, दूध से घी मक्खन आदि बनाने हेतु तथा उनके विक्रय हेतु अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी। अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु पशुपालन एक सशक्त माध्यम था।

वर्तमान डेयरी उद्योग की अवधारणा भी वेदों की ही देन है। तत्कालीन आर्य गाय के दूध तथा उससे बनने वाले पदार्थों के उपयोग, लाभ तथा निर्माण प्रक्रिया से पूर्णतः परिचित थे। विभिन्न प्रकार के यज्ञों में दुग्ध व दुग्ध निर्मित पदार्थ यथा– दूध, घी, दही, मक्खन आदि के उपयोग, संस्कारगत विधानों में बालक के जन्म के समय मेधावर्धन के उद्देश्य से मधु व गोघृत बालक को चटाया जाता था, यह परम्परा वर्तमान में भी अनेक परिवारों में प्रचलित है–

---

[229] ऋग्वेद, 1.34.9

[230] स्रोत– वैदिक साहित्य के आधार पर सङ्कलित

**ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै**

**यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः**

**अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः**

**परमं पदमव भाति भूरि।**[231]

हे अश्विनी कुमारों! हम आपके उस गोलोकरूप–धाम में जाना चाहते हैं जहाँ बड़ी–बड़ी सींगवाली, सर्वत्र विचरण करने वाली गौएँ निवास करती हैं, वहीं सर्वव्यापक विष्णु का परमपद प्रकाशित हो रहा है।

शुक्ल यजुर्वेद में तो गौ की महिमा का वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है–

**देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्ना**

**इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत**

**माघशँ्सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात्।।**[232]

अर्थात् हे गौओ! प्राणियों तत् तत् कार्यों में प्रविष्ट कराने वाले सविता देव तुम्हें हरित–शस्य–परिपूर्ण गोचर क्षेत्र में चरने के लिए ले जाएँ, क्योंकि तुम ही श्रेष्ठ कर्मों का निष्पादन करती हो। तुम इन्द्रदेव के क्षीर के समान अधिक दुग्ध प्रदान करने वाली होओ। कोई तुम्हें चुरा न सके, हिन्सक जीव तुम्हें मार न सके। तुम संतति उत्पन्न करने वाली हो, जिनसे समस्त संसार का कल्याण होता है, तुम जहाँ रहती हो वहाँ किसी प्रकार की व्याधि नहीं आ पाती। तुम अयक्ष्मा (रोग निवारक) हो। अतः तुम सर्वदा यजमान के घर निवास करो।

**अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज**

**स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय।**[233]

---

[231] ऋग्वेद, 1.154.6

[232] शु.यजु., 1.1

हे गौओं! तुम अन्नरूपा हो, अर्थात् मानव मात्र की क्षुधा पूर्ति हेतु दुग्ध–घृतादि को देने वाली हो, तुम्हारी कृपा से हमें भी दुग्ध–घृतादि प्राप्त हो। तुम पूजनीय हो अतः तुम्हारे सेवन से हम श्रेष्ठता को प्राप्त करें। तुम बलप्रदायिनी हो अतः तुम्हारी कृपा से हम भी बल को प्राप्त करें तुम धन को विस्तीर्ण करने वाली हो, अतः हम भी धन की वृद्धि प्राप्त करें।

अथर्व वेद में भी कहा गया है–

**धेनुं सदनं रयीणाम्।**[234]

अर्थात् गौ सम्पत्ति का निवास है। जहाँ गोधन का सम्मान किया जाता है वहाँ समस्त सम्पत्तियाँ स्वतः ही चली आती है।

**यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरंचित्कृणुथा सुप्रतीकम्।**

**भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु।।**[235]

हे गौओं! तुम अपने दुग्ध व घृतादि के द्वारा दुर्बल मनुष्यों को हृष्ट–पुष्ट करती हो, निस्तेजों को तेजस्वी बनाती हो, तुम स्वयं की मङ्गलमयी वाणी द्वारा घर के वातावरण को मङ्गलमयी बनाती हो। अतः सभाओं में सर्वत्र ही तुम्हारी कीर्ति का गान होता है।

गौ द्वारा समस्त मानवजाति को प्राप्त पदार्थों तथा कल्याण के विषय में शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है–

**गार्वै प्रतिधुक्। तस्यै श्रृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि**

**तस्यै मस्तु तस्याऽआतञ्चनं तस्यै नवनीतं तस्यै**

**घृतं तस्या आमिक्षा तस्यै वाजिनम्।**

---

[233] शु.यजु., 3.22
[234] अथर्व वेद, 11.1.34
[235] अथर्व वेद, 4.21.6

अर्थात् गौएँ हमें ताजा दूध, दही, मट्ठा, घृत, खीस, मक्खन इत्यादि अमृतमय भोजनीय पदार्थ प्रदान करती है, जिसके सेवन से व्यक्ति आरोग्य, बल, बुद्धि, ओज एवम् शारीरिक बल प्राप्त करते हैं।

सम्प्रति भी डेयरी उद्योग राष्ट्र की आर्थिक सुदृढ़ता हेतु एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है। भारत के गुजरात तथा अन्य क्षेत्रों से विदेशों में भी दुग्ध निर्मित पदार्थ तथा दूध पावडर का निर्यात हो रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में लगभग 1,95,000 टन दूध पावडर का वार्षिक उत्पादन होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार 'इस्कॉन' द्वारा सञ्चालित गोशालाएँ जो विदेशों में भी स्थापित हैं तथा वहाँ गायों को परिष्कृत शुद्ध घास का सेवन कराकर, प्राप्त दूध का विक्रय किया जाता है, जिसकी माँग विदेशों में अत्यधिक है तथा लोग शुद्ध दूध व उससे निर्मित पदार्थों के लिए दुगने–तिगुने दाम भी देने को तैयार हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पशुपालन प्रत्येक युग में अर्थप्रदायिनी संस्था के रूप में मान्य हैं। वैदिककालीन आर्य भी पशु सम्पदा के महत्त्व से पूर्णरूपेण परिचित थे। पशुओं की सेवा, उनके उपयोग तथा उनके रक्षण के प्रति वे अत्यधिक सतर्क थे।

**यातायात प्रबन्धन**

अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु यातायात व्यवस्था अति महत्त्वपूर्ण है। यातायात प्रबन्धन की अवधारणा सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक इत्यादि समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सशक्त माध्यम के रूप में अनादिकाल से अस्तित्व में रही है। अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु यातायात व्यवस्था अति महत्त्वपूर्ण है।

वैदिककालीन समाज भी यातायात के क्षेत्र में उत्तम ज्ञान–विज्ञान को जान चुका था। परिवहन के साधनों के रूप में पशुओं, शकटों से लगाकर विमानों तक के विषय में वेदों में

अनेकानेक उद्धरण उपलब्ध हैं। व्यापार सम्बद्ध तथा व्यक्तियों के लिए आवागमन के साधनों को मुख्यतः निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. स्थलमार्गीय यातायात
2. जलमार्गीय यातायात
3. वायुमार्गीय यातायात

यातायात साधनों से सम्बद्ध शब्दावली वैदिक वाङ्मय में निम्नानुसार प्राप्त होती है–

**तालिका**

**यातायात साधनों से सम्बद्ध वैदिक शब्दावली[236]**

| वैदिक शब्दावली | अर्थ |
|---|---|
| शकट | बैलगाड़ी अथवा रथ |
| अनस् | उषा का वाहन (रथ) |
| अनड्वाह | गाड़ी खीचने वाला (बैल) |
| द्रुणा, प्लव | बड़ी नौका |
| रथस्पति | अनेक रथों का मालिक |
| रथचक्र | रथ के पहिये |
| अश्वपति | अश्वों का मालिक |
| यान | विमान |

वैदिककालीन यातायात के साधनों के विषय में गहन् अध्ययन के उपरान्त पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी यह स्वीकार किया है कि वैदिक आर्य उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे, जिन्होंने अनेक प्रकार के अन्य विज्ञानों के अतिरिक्त विमान तथा विशाल समुद्री जहाजों के अभियांत्रिकी निर्माण कला का ज्ञान अर्जित किया था।

[236] स्रोत– वैदिक साहित्य के आधार पर सङ्कलित

**स्थलमार्गीय** परिवहनतन्त्र के अन्तर्गत ऊँट, हाथी, बैल, खच्चर, घोड़ा, घोड़ी, बड़ा बकरा आदि पशुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिककालीन यातायात व्यवस्था में 'अश्व' तथा 'वृषभ' का सर्वाधिक उपयोग होता था। अश्व तथा 'वृषभ' प्रायः जन सामान्य द्वारा उपयोग किये जाते थे। अश्व के अनेक पर्यायवाची यथा 'वाजिन', 'हय', 'अत्य', 'अर्वन्त' इत्यादि प्राप्त होते हैं। अश्वों की देखरेख करने वालों तथा उन्हें चला सकने में कुशल व्यक्तियों का वर्णन प्राप्त होता है। अश्वों का प्रयोग युद्ध क्षेत्रों में, रथों में तथा मालवाहक गाड़ियों में भी किया जाता था। तत्कालीन आर्य 'अश्व' की द्रुत गति से परिचित थे तथा उस पर नियंन्त्रण करने की कला में भी निपुण थे।

**रथे निष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रतत्र कामयते सुषारथिः।**

**अभीशूनां महिमानं पानयत मनः पश्रद्धादनु यच्छन्ति रश्मयः।**[237]

**आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो।**[238]

स्थल मार्गीय यातायात के साधनों में बैल गाड़ियों, घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले छोटे तथा विशाल उभय प्रकार के रथों का वर्णन प्राप्त होता है।

**उष्ट्रा यस्य प्रवाहणों वधूमन्तो द्विदर्श।**

**वर्ष्मा रथस्य निजिहीऽते दिव ईषमाणा अपस्पृशः।**[239]

**एवम् – 'उष्ट्रो न पीपरो मृधः' इत्यादि**

**वायु मार्ग** द्वारा परिवहन प्रायः देवताओं के लिए प्रयोग किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों के 'अश्वरहित रथ' का उल्लेख प्राप्त होता है तथा वैज्ञानिकों के अनुसार अश्व रहित रथ तो यान्त्रिक ही हो सकता है।

अन्य स्थान पर वर्णन है कि–

**आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृलीकः स्ववां यात्वर्वाङ्।**

---

[237] ऋग्वेद, 6.75.6
[238] वही, 8.26.4
[239] अथर्ववेद,20.127.2

**यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिबन्धुरो वृषणा वातरंहाः।**[240]

अर्थात् अश्विद्वय तुम्हारा बाज पक्षी की तरह द्रुतगतिवाला, सुखकर एवम् सम्पन्न रथ हमारे सम्मुख आवे। हे देवों! तुम्हारा रथ मनुष्य के मन के समान वेगवान, त्रिविध बन्धनों से युक्त और वायु वेगी है।

उपर्युक्त मन्त्र के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर वायु मार्गीय यातायात का वर्णन है जो 'यान' अथवा 'विमानों' द्वारा किया जाता था–

**अनश्वो जातो अनभीशुरुकथ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः**

**महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ।।**[241]

अर्थात् हे ऋभुओं! तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अश्विनी कुमारों का त्रिचक्र रथ अश्व के बिना तथा लगाम के बिना अन्तरिक्ष (आकाश) में परिभ्रमण करता है। जिसके द्वारा आप पृथ्वी का पोषण करते हो, वह रथ निर्माण रूप महान कार्य आपको प्रसिद्धि प्रदान करता है। उपर्युक्त मन्त्र से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि अश्विनी कुमार और ऋभु विमानों का उपयोग ही नहीं करते थे अपितु उनके निर्माण का ज्ञान भी उन्हें था।

**जलमार्गीय** आवागमन के साधनों के उपयोग से भी वैदिक आर्य भलीभाँति परिचित थे। समुद्र को पार करने के लिए नौकाओं के उपयोग के अतिरिक्त समुद्र में आनेवाले ज्वार–भाटे के विषय में, दिशाओं का ज्ञान, नदियों के प्रवाह की गति इत्यादि सूक्ष्म वैज्ञानिक तथ्यों का भी ज्ञान था।

**अदो यद्दारूप्लवते सिन्धोः पारे अपूरूषम्।**[242]

समुद्र के पार प्लवन कर सकने वाली 'दारु' (नौका) का वर्णन प्राप्त होता है। लकड़ी के पानी पर तैर सकने वाले गुण को वे जान चुके थे।

**द्रुणां न पारमीरया नदीनाम्।**[243]

---

[240] ऋग्वेद, 1.118.1
[241] ऋग्वेद, 4.36–1
[242] ऋग्वेद, 10.155.3

वेदों में समुद्रपार कर सकने वाली बड़ी नौकाएँ तथा नदियों को पार करने के लिए छोटी नौकाओं के विषय में उल्लेख प्राप्त है।

ऋग्वेद के अधोलिखित मन्त्रों से ज्ञात होता है कि समुद्रों के माध्यम से वस्तुओं का आयात निर्यात होता था जो धन की अभिवृद्धि करता था–

**रायः समुद्रांचतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।**[244]

**आ पवस्त सहस्त्रिणः।**[245]

नौकाएँ समुद्र में व्यापार के लिए ही उपयोगी न थी अपितु युद्ध के लिए भी इनका उपयोग किये जाने का वर्णन है–

**तुग्रोह भुज्युमश्विनोदमेधे रयिं न कश्चिम्भमृवां अवाहाः।**
**तमूहभुनौर्भिरात्मन्वती भिरन्तरिक्षप्रुद भिरपोदका भिः।।**[246]
**आ नो नावा मतीना यातंपरायगन्तवे।**[247]

**'यास्ते पूषन् नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययी।**[248]

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर 'सिन्धु' शब्द प्राप्त होता है, कुछ विद्वान इसे समुद्र के रूप में देखते हैं तथा कुछ इसे सिन्धु नदी बताते हैं। तत्कालीन आर्य सिन्धु के प्रति वरेण्य भाव रखते थे। सिन्धु के तट पर पुष्ट अश्व होते थे। अतः अथर्ववेद तथा बृहदारण्यकोपनिषद में घोड़े के लिए 'सैन्धव' शब्द का प्रयोग किया गया है। ये घोड़े बिक्री के लिए बाहर भेजे जाते थे। सिन्धु तट पर बकरों और भेड़ों के लोम से सुन्दर कपड़े, शाल और कम्बलों का निर्माण भी किया जाता था। जिससे तत्कालीन सुसङ्गठित व सुविकसित आर्थिक प्रबन्धन का ज्ञान होता है। सिन्धु के तट पर फूलों के

---

[243] वही, 8.96.11
[244] वही, 9.33.6
[245] ऋग्वेद, 10.47.2
[246] वही, 1.116.3
[247] वही, 1.46.7
[248] वही, 6.58.3

आधिक्य से मधु भी बहुत होता था जो विक्रय किया जाता था। समुद्री मोतियों, मणियों आदि की प्रचुरता से तटों के निकटस्थ जनपदों में धनाधिपतियों की संख्या भी अधिक थी।

वैदिक आर्य समुद्रों में घूम–घूमकर व्यापार करते थे तथा युद्ध के लिए भी उनका उपयोग करते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आर्यों को स्थल मार्गों का ही नहीं अपितु जलीय मार्गों का भी पूर्ण ज्ञान था तथा यही ज्ञान अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में सहायक होता था।

**शिल्प एवम् उद्योग प्रबन्धन**

किसी भी समाज की उन्नति हेतु, उसकी आर्थिक सुदृढ़ता हेतु तथा बुद्धि एवम् विभिन्न कलाओं के विकास हेतु तत् तत् समाज के **शिल्प व उद्योगों** का अत्यधिक महत्व है। वैदिककालीन संस्कृति में अनेक प्रकार के शिल्पों एवम् उद्योग धन्धों को सञ्चालित करने में कुशल आर्य विद्यमान थे। वैदिक आर्य पुरूषार्थ में विश्वास करते थे। तत्कालीन आर्यों का मत था कि नाना प्रकार के वैभव, यश, चमत्कार मनुष्य के हाथों में ही विद्यमान हैं–

**बाहू मे बलमिन्द्रयं हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।**[249]

उद्योगों के विषय में वैदिक वर्ण व्यवस्था अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। उद्योगों का मूल उत्स विभिन्न समाजजनों की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही निहित है। एतदर्थ वैदिककालीन अर्थव्यवस्था में बड़े–बड़े उद्योगों से लेकर लघु व कुटीर उद्योगों का भी वर्णन प्राप्त है।

विभिन्न प्रकार की यज्ञोपयोगी वस्तुओं के निर्माण व सञ्चय का कार्य, विविध प्रकार के रथ यान आदि बनाने का कार्य, खेतों, खलिहानों में अन्न के संधारण का कार्य, विशाल तथा संकरे मार्गों के निर्माण का कार्य, कुँए, तालाब व नहरें बनाने का कार्य, गृह व विशाल भवनों के निर्माण का कार्य, काष्ठ, लौह, पत्थर इत्यादि के माध्यम से शिल्प निर्माण व विक्रय का कार्य, चरणपादुकाओं के निर्माण

[249] यजुर्वेद 20.7

हेतु चर्मकार का कार्य, इस प्रकार अनेक व्यवसाय तथा उनसे संयुक्त उद्योगों के विकास क्रम का वर्णन प्राप्त होता है।

अस्तु वैदिक आर्थिक प्रबन्धन में प्रत्येक स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए किसी न किसी कार्य का विधान है। शुक्ल यजुर्वेद में वर्णित यज्ञ प्रबन्धन के अन्तर्गत तत्कालीन समाज में प्रचलित शिल्प एवम् उद्योगों से सम्बद्ध प्रतिनिधियों को यज्ञ में आमन्त्रित किया गया है–

**नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं**
**नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभम् हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषंख प्रमदे कुमारीपुत्रं**
**मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम्।।6।।**
**तपसे कौलालं मायायै कर्मारम् रूपाय मणिकारम् शुभे वपम् शरव्याया**
**इषुकारम् हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे**
**मृगयुमन्तकाय श्वनिनम्।।7।।**
**नदीभ्यः पौञ्जिजष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धवोप्सरोभ्यो व्रात्यं**
**प्रयुग्भ्य उन्मत्तम् सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं**
**पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्।।8।।**
**सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या**
**एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीम् संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकमोद्यायोपसदं**
**वर्णायानुरुधं बलायोपदाम्।।9।।**
**उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्त्रामम् स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं**
**पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं**
**मर्यादायै प्रश्नविवाकम्।।10।।**

अर्मेम्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्टयै गोपालं वीर्यायाविपालं

तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपम् श्रेयसे

वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम्।।11।।

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रघ्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय

परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारम् सर्वेभ्यो लोकेभ्य

उपसेक्तारमवऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूली प्रकामाय

रजयित्रीम्।।12।।

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्रयायानुक्षत्तारं

बलायानुचरं भून्ने पकिष्कन्द प्रियाय प्रियवादिनमिरष्टया अश्वसादम् स्वर्गाय

लोकाय भागदुधं वर्षिष्ठायनकाय परिवेष्टारम्।।13।।

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारम् शोकायभिसर्तारं क्षेमाय

विमोक्तारमुत्कूलनिकूले–

भ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतम् शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं

यमायासूम्।।14।।

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाम् संवत्सराय पर्यायिणीं

परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायाति– ष्कद्वरीं मत्सराय

विजर्जराम् संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धम् साध्येभ्यश्चर्मन्नम्।।15।।

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो वैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय

मार्गारमवाराय कैवर्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालम् स्वनेभ्यः पर्णकं

गुहाभ्यः किरातम् सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किंपूरुषम्।।16।।

**बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं**

**विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमात्यै जनवादिनं व्यृद्धया**

**अपगल्भम् स ँ्शराय प्रच्छिदम्।।17।।**

**अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्श त्रेतायै कल्पिनं**

**द्वापरायाधिकल्पिनभास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोधातं**

**क्षुधे यो गां विकृन्तन्त भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने**

**सैलगम्।।18।।**[250]

वैदिक वाङ्मय सर्वत्र श्रमजीवी को नमस्कार करता है, कोई भी छोटे से छोटा कार्य जो किसी व्यक्ति को सम्मानजनक अर्थार्जन में सहायक हो कभी हेय नहीं हो सकता। यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में सभी प्रकार के उद्यमियों का सम्मान करते हुए उन्हें समाज में उनकी उपादेयता के चलते उन्हें सम्मानित किया गया है–

[250] शु. यजु. 30.1–18

## तालिका

## श्रमजीवियों के लिए वैदिक सत्कार वचन[251]

| | |
|---|---|
| अन्नानांपतयेनमः | अन्न के स्वामी, अन्न का व्यापार करने वाले को नमस्कार हो। |
| नमो नादेयाय च | नदियों की व्यवस्था में कुशल प्रबन्धक को नमस्कार। |
| पशुनां पतये नमः | पशुसंपदा का सम्मान, रक्षण पालन व व्यापार करने वालों को नमस्कार हो। |
| नमो मंत्रिणे वाणिजाय | व्यापार व्यवसाय में कुशल सलाहकारों को नमस्कार। |
| नमस्तक्षभ्यः | शिल्पियों के लिए नमस्कार हो। |
| नमः उर्वरयि च | भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में कुशलों को नमस्कार हो। |
| खल्याय च | खलिहान क्रिया अर्थात् अन्न फलों को सुरक्षित रखने में कुशलों को नमस्कार हो। |
| नमः पथ्याय च | विशाल मार्गों के निर्माण कला में निपुणों को नमस्कार। |
| नमः स्तुत्याय च | लघु मार्ग–निर्माण कला में कुशलों को नमस्कार। |
| नमो वास्तव्याय च | गृह निर्माण में कुशलों (वास्तु विदों) को नमस्कार। |
| नमः शुष्क्याय च | भोज्य पदार्थों को सूखा बनाकर रखने की कला में प्रवीण जनों को नमस्कार। |
| नमो हरित्याय च | भोज्य वस्तुओं को हरी, ताजी रखने की कला में प्रवीण जनों को नमस्कार। |
| रथकारे भ्यश्च वो नमः | रथ निर्माण कला में निपुणों को नमस्कार। |
| नमो गह्वरेष्ठायच | गुफा निर्माण में कुशल के लिए नमस्कार। |
| साध्येभ्यश्शर्मम्न्मः | साध्य कर्म हेतु चर्माभ्यासी को |
| नमो रोहिताय स्थापतये | ऐश्वर्य बुद्धिकारक शिल्पियों को नमस्कार। |

'उद्योग–धन्धे' मुख्यतः इस तथ्य पर क्रियान्वित होते हैं, कि किस स्थान पर किस पदार्थ का आधिक्य है, किस स्थान पर किस–किस पदार्थ की आवश्यकता है व किस स्थान पर कौनसा पदार्थ किस भाव बिक सकेगा।

[251] स्रोत– वैदिक साहित्य के आधार पर सङ्कलित

यही माँग व पूर्ति का सिद्धान्त राष्ट्र की आयात–निर्यात नीति पर भी कार्य करता है। हमारी निर्यात स्थिति तथा कहाँ से कोई पदार्थ कम दामों में प्राप्त हो सकता है, इन्हीं स्थितियों के ज्ञान द्वारा किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ की जा सकती है। वेदों में भी कहा है–

**शतहस्त समाहार सहस्रहस्त संकिर।**[252]

इस मंत्र को आयात–निर्यात नीति से संयोजित कर इस अर्थ में जान सकते हैं कि राष्ट्र की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए आयात द्वारा संग्रह सैकड़ों हाथों से करना चाहिये तथा राष्ट्र की प्रचुर सम्पदा का निर्यात हजारों हाथों से करना चाहिये जिससे मौद्रिक सम्पन्नता आती है।

व्यापार अर्थ प्रधान होता है तथा जिन पदार्थों से व्यापार किया जाता है वे अर्थ प्राप्ति में सहायक होते हैं। विनिमय का माध्यम द्रव्य तथा वस्तुएँ भी हो सकती थीं। वैदिक काल में धान यथा गेहूँ, जौ, ज्वार, चावल, गुड़, सब्जी, घोड़ा, गाय, बकरियाँ आदि के विनिमय द्वारा व्यापार सञ्चालित होता था जो मनुष्यों की सामुदायिक वृत्ति को प्रोत्साहित कर परस्पर सहकारिता की भावना को प्रगाढ़ करता था। शनैः शनैः वस्तु विनिमय के माध्यम से कार्य निष्पादन में कठिनाई बढ़ने लगी तथा माध्यक के रूप में धातुओं का विनिमय होने लगा।

ऋग्वेद के ही एक द्रष्टान्त के अनुसार इन्द्र की एक मूर्ति का मूल्य दस गायें हैं–

**क इमं दशभिर्मम इन्द्र क्रीणाति धेनुभिः।**[253]

वहीं दूसरी ओर यह कहा गया है कि इन्द्र को क्रय नहीं किया जा सकता न तो एक हजार न ही दस हजार गायों से–

**महेयन त्वां अद्रिबः पराशुल्काय देवाम्।**

**न सहस्त्राय न युताय ब्रजिवो न शताय शतामधः।।**[254]

---

[252] अथर्ववेद, 3.24.5
[253] ऋग्वेद, 4.24.10
[254] वही, 8.1.15

यह मंत्र यही सङ्केत करता है कि तत्कालीन आर्य दैवीय शक्तियों के प्रति सम्मान का भाव रखते थे।

**वित्ते रमस्व बहुमन्य मानः।**[255]

प्राचीन भारतीय संस्कृति सदैव श्रमार्जित धन पर ही प्रसन्न रहने का उपदेश देती है–

**उभा हि हस्ता वसुना पृणस्व।**[256]

अर्थात् हे प्रभु! हमारे दोनों हाथों को धनों से पूर्णतः भर दो। सर्वप्रथम तो वेदों में सभी के लिए धन की प्रार्थना की गई है। वेद सामूहिक आर्थिक विकास तथा सामुदायिक समृद्धि की प्रेरणा देते हैं।

समाज में विभिन्न विचारधारा के लोग विद्यमान हैं। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो मात्र अपनी ही आर्थिक उन्नति चाहते हैं, अर्थार्जन द्वारा मात्र स्वयं समस्त सुखों का उपभोग करना चाहते हैं। यही स्वार्थपरक भावना राष्ट्र के आर्थिक विकास में बाधक होती है।

**मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।**

अर्थात् जो धन जिसके निमित्त है उसका वितरण कर त्याग पूर्वक उपभोग करने का उपदेश दिया गया है। तत्कालीन आर्थिक प्रबन्धन सङ्कीर्णता के मार्ग से परे अधिकतम सामाजिक सुख प्राप्ति की ओर प्रेरित रहता था।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वर्णित 'दान' की अवधारणा भी इस भावना को पुष्ट करती है। वेद कहते हैं कि जो व्यक्ति स्वार्थरहित हो अतिरिक्त धन का सञ्चय न कर उसे योग्य व्यक्ति को दान करता है उसे ईश्वर सदैव सम्पन्न रखते हैं।

ऋग्वेद के अधोलिखित मन्त्र में भौतिक समृद्धि, अर्थ की अवधारणा तथा दान करने वाले व्यक्ति के ऐश्वर्य के विषय में वर्णन प्राप्त होता है–

---

[255] वही, 10.34.13
[256] यजुर्वेद, 5.19

**प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिग्रह्या नि धत्ते।**

**तेन प्रजां वर्धमान अयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः।।**

**सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रौ दधाति।**

**यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति।।**

**आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन।**

**अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः।।**

**उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणंचधेनवः।**

**पृणन्तं च पपुरिंच श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः।।**

**नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितोयः पृणाति स ह देवेषु गच्छति।**

**तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणापिवन्ते सदा।।**

**दक्षिणावतमिदिमानि चित्रा दक्षिणावतं दि वि सूर्यासः।**

**दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः।।**

**मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुब्रतासः।**

**अन्यस्तेषा परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तभि सं यन्तु शोकाः।।**[257]

अथात् उषा काल में दान देने वाला व्यक्ति आयु, सन्तान तथा पराक्रमपूर्ण रक्षित रहता है। वह असंख्य गौ, अश्वों और सुवर्ण से परिपूर्ण होता है। इन्द्र ऐसे दानी को सामर्थ्यवान बनाते हैं। यज्ञ की इच्छा करने वाले यजमान के पास कल्याणकारी गौओं की अपार राशि होती है तथा गौरव की अभिलाषा करने वाले दानी मनुष्यों के पास घृत की नदियाँ चहुँ दिशाओं से आती है। स्वर्ग में भी उसका आदर सत्कार होता है। वह देवतुल्य हो जाता है। जलरूपी अमृत की नदियाँ भी उसके लिए ही बहती है। दक्षिणा भी उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती है। दानी व्यक्ति के पास विभिन्न ऐश्वर्य

---

[257] ऋग्वेद, 1.125.1

विद्यमान होते हैं। आकाश में सूर्य दानियों के लिए ही स्थिर है। ऋग्वेद आर्थिक प्रबन्धन के उद्देश्य से दान की अवधारणा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कोई व्यक्ति जब निःस्वार्थ हृदय से दान का प्रयास करता है तो वह सदैव प्रसन्न रहता है, दीर्घायु होता है, पाप उसके समीप नहीं आता, नियमों में रूकावट नहीं आती। सारे दुःख उससे दूर ही रहते हैं।

उपर्युक्त सूक्त का सार यही है कि शुद्ध हृदय से दिया गया दान दानी को आत्मिक सन्तुष्टि प्रदान करता है। वेदों में यह भी कहा गया है कि विभिन्न प्रकार के व्यापारों द्वारा समाज जनों के पास स्वयं की आवश्यकता पूर्ति के पश्चात् जो धन शेष रहता है व्यक्ति उस धन का संग्रह करने लगता है तथा शनैः शनैः उसके पास भविष्य की आवश्यकताओं से भी अधिक धन एकत्र होने लगता है। किन्तु व्यक्ति यदि स्वार्थरहित होकर सार्वजनिक कार्यों हेतु सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से उस धन का कुछ भाग दान करता है तो यह समाज में आर्थिक सन्तुलन स्थापित करने में सहायक होता है।

वर्तमान आर्थिक सन्दर्भों की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य में सञ्चय करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, नित नवीन घोटालों का रहस्योद्घाटन हो रहा है, करोड़ों अरबों रूपयों की हेरा–फेरी साधारण हो चली है। सम्प्रति प्रायः प्रत्येक व्यक्ति और अधिक धन कम से कम समय में प्राप्त करना चाहता है। आधुनिक मनुष्य धन के लालच में प्रज्ञा शून्य होता जा रहा है। सरकार द्वारा सञ्चालित विभिन्न योजनाओं का लाभ अन्तिम व्यक्ति तक पहुँचे उससे पूर्व ही योजना में संलग्न व्यक्ति उस धन को हजम कर लेते हैं। एक सर्वे रिपोर्ट के अनुसार (ले. दिलीप मण्डल) सारे विश्व में ठगों का साम्राज्य उत्तरोत्तर विस्तार को प्राप्त हो रहा है। यहाँ तक कि अनेक अशिक्षित लोग ही नहीं अपितु शिक्षित तथा धनाढ्य लोग भी इन ठगों के पाश में बंध जाते हैं और मूल में होता है, वही अधिक धन कम समयावधि में प्राप्त करने का अतिशय लालच, अति आत्मविश्वास, आलस्य, अकर्मण्यता और अज्ञान। गुड़गाँव स्थित सिटी बैंक की शाखा में वहाँ के मेनेजर शिवराज पुरी ने किसी नवीन योजना

का हवाला देकर लगभग चालीस खातेदारों को ललचाकर उनके लगभग चार सौ करोड़ रूपये हड़प लिये। वहीं कर्नाटक की एक प्रतिष्ठित कम्पनी के प्रमुख माधवन ने एक नकली फायनेंस कम्पनी गठित कर ऊँचे रिटर्न का भरोसा जता कर निवेशकों के लगभग दो करोड़ रूपये जमा करवाए तथा उन्हें हड़प लिया।

इस प्रकार की अनेकों घटनाएँ देश विदेश में होती रहती है। अर्थार्जन के लिए श्रम प्रधान लोभ रहित वैदिक अवधारणा को जानने की आज महती आवश्यकता है।

आज कम्प्यूटर युग में नई–नई प्रणालियों का उदय हो रहा है। क्रय–विक्रय की प्रणाली में आधुनिक उपभोक्ताओं हेतु नवीन 'ई–प्रणाली' विकसित होरही है। इंटरनेट व क्रेडिट कार्ड के माध्यम से खरीददारी करने वाली नवीन पीढ़ी जालसाजी का भी शिकार हो रही है। व्यक्ति कम्प्यूटर के माध्यम से देश–विदेश की सभी आवश्यक वस्तुओं को घर बैठे ही खरीद सकता है। उपभोक्तावाद की इस नवीन प्रणाली के साथ–साथ अनेक प्रकार के जालसाजों का भी उदय हो रहा है जो नकली वेबसाईट्स के माध्यम से लोगों को भ्रमित कर रहे हैं।

आर्थिक प्रबन्धन के दो पक्ष होते हैं, जहाँ वर्तमान समय में ठगों का अस्तित्व उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। वहीं दूसरी ओर धनाढ्य वर्ग के मध्य दान की अवधारणा तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना प्रगाढ़ होती जा रही है, जो कि शुभ सूचक है।

भारत वर्ष की संस्कृति निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर रही है। किसी संस्कृति का व्यवस्थित विकास वास्तविक रूप में तत्–तत् संस्कृति में सम्मिलित संस्थाओं आदर्शों एवम् कार्य पद्धतियों का विकास ही है।

वैदिक सम्पदा हमारी अमूल्य धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित है। वर्तमान सामाजिक समस्याओं तथा विसङ्गतियों के समाधान वैदिक संस्कृति में ही खोजे जा सकते हैं। वैदिक वाङ्मय में आर्थिक प्रबन्धन के उद्देश्य से व्यक्ति के दैनन्दिन आवश्यकताओं, जीवन दर्शन तथा धन सञ्चय के विषय में

विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। वेद कहते हैं कि स्वपराक्रम द्वारा अर्जित धन के ही हम स्वामी हो सकते हैं किन्तु उसमें भी समाज का अंश निहित होता है, जिसे समाज को प्रदान करने पर ही हम सुखी व सन्तुष्ट हो सकते हैं। वेदों के अनुसार अनुचित मार्ग द्वारा अर्जित धन, ऋण तथा धन का आवश्यकता से अधिक सञ्चय पाप के समान दण्डनीय है।

आर्थिक प्रबन्धन की वैदिक प्रणाली का यह विवरण– वेद, सहित, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण, कर्मकाण्ड, लौकिक संस्कृत साहित्य आदि विधाओं में भी निरन्तर चिन्तन का विषय रहा है। इस परिधि में विवेचित कतिपय एतद् विषयक स्थल का लेखन अभीष्ट है–

**पुरूषार्थ–**चतुष्ट्य रूपी माला का द्वितीय मनका अर्थ है–मनुष्य के इहलोक और परलोक सम्बन्धी प्रयोजन की सिद्धि में अर्थ एक महत्त्वपूर्ण कारक होता है। आचार्य कौटिल्य ने कहा है–**''अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः''**। 'अर्थ' शब्द का कोषगत अर्थ होता है**–'कांक्षित वस्तु**'। चाणक्य ने प्रतिपादित किया है कि प्राणियों के सुख समृद्धि का मूल धर्म है तथा धर्म का उत्स है अर्थ।

**सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्यमूलं अर्थः।**[258]

**विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्यभाण्डोपस्करमित्रावदीनामर्जनमजितस्य विवर्धनमर्थः।**[259]

उपर्युक्त उक्ति में वात्सायन ने अर्थ सम्बन्धी पदार्थों में विद्या, भूमि, स्वर्ण, रजत, पशु, धन–धान्य, पात्र, काष्ठ, लोह, निर्मित वस्तु, गृहोपयोगी वस्तुओं का अर्जन तथा अर्जित वस्तुओं के संवर्धन को आर्थिक प्रबन्धन के अन्तर्गत माना है। वहीं शुक्राचार्य के अनुसार अर्थ की व्याख्या उन स्त्रोतों के आधार पर की जानी चाहिए जो अर्थोत्पत्ति में सहायक होते हैं। विद्या, शूरता, दक्षता, बल धैर्य मित्र इत्यादि के द्वारा अर्थ सिद्धि संभव है–

**विद्या शौर्यंच दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।**

**मित्राणि सहजान्यहुर्वर्तयन्ति हि तैर्बुधाः।।**[260]

---

[258] चाणक्यसूत्र 1.1.3

[259] कामसूत्र 2.14

मनुष्य जीवन का अस्तित्व उसका रक्षण तथा संवर्धन प्रायः अर्थ पर आश्रित है। महाकवि शूद्रक 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना में कहते हैं–

**शून्यमपुत्रस्य गृहं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम्।**

**मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्व शून्यं दरिद्रस्य।।**[261]

भारतीय संस्कृति में प्रचलित स्तोत्र परम्परा के अन्तर्गत महालक्ष्मी स्तोत्र एवम् लक्ष्मी स्तुतियों में सर्वत्र यही वर्णित है कि दारिद्र्य मानव जीवन के लिए अभिशाप है। विद्वानों ने अनेक सुभाषितों के माध्यम से कहा है कि अर्थ संकोच मनुष्य को जीवित होते हुए भी निष्प्राण बना देता है। मनुष्य जीवन रूपी रथ में अर्थ धुरी के समान है जिसके चारों ओर जीवन परिक्रमा करता है–

**धनमर्जय काकुत्स्थ धनमूलमिदं जगत्।**

**अन्तरं नैव पश्चामि निर्धनस्य मृतस्य च।।**

**यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः सः पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः**

**स एव वक्ता सचदर्शनीयः सर्वेः गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते।।**

**निर्द्रव्याः पुरूषाः सदा च विकलाः सर्वत्र मन्दादराः**

**पुत्रभातृनिरापराधकुपितं दृष्टं न संभाषणम्।**

**भार्यारूपमती सुमन्दमनसा स्नेहेन नालिङ्गते**

**तस्माद्रव्यमुपार्जय शृणु सखे द्रव्येण सर्व वशाः।।**

**नैव विद्ययानैव कुलेन गौरवं जनानुरागो धनिकेषु सर्वदा।**

**कपालिना मौलिधृतापिजाह्नवी प्रयाति रत्नाकरमेव सत्वरम्।।**[262]

---

[260] शुक्रनीति, 4.13

[261] मृच्छकटिकम, 1.8

[262] सुभाषित रत्नभाण्डागारम्, पृ 13, 3, 10, 17, 96, 13

नारद स्मृति में भी उल्लिखित है कि मानव जीवन की सारी क्रियाएँ अर्थमूलक हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति सर्वत्र पुरूषार्थ द्वारा अर्जित धन की ही प्रशंसा करती है तथा कहा भी गया है अर्थार्जन हेतु मनुष्य को सदैव प्रयत्नरत रहना चाहिये–

**अर्थमूलः क्रियाः सर्वायत्नस्वस्यार्जने मतः।**[263]

मनुष्य जीवन में आर्थिक सम्पन्नता होना व्यवहारिक रूप से नितान्त आवश्यक है। मनुष्य कितना भी गुणवान, प्रतिभावान क्यों न हो इसके अभाव में स्त्री, पुत्र, परिवारजन, परिचित किञ्चित भी सम्मान नहीं करते। वस्तुतः सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन में धन के उपार्जन हेतु साधन शुचिता पर अत्यधिक बल दिया है।

आधुनिक भौतिकवादी चिन्तन से विपरीत भारतीय परम्परा में धन पुरूषार्थ है। अतः धनार्जन में शुचिता अवश्यम्भावी है। पञ्चतन्त्र की कथा में अनेक स्थानों पर वर्णित है कि अर्थार्जन हेतु कुत्सित मार्गों का आश्रय ग्रहण करने वाला व्यक्ति अन्ततोगत्वा पतन की ओर ही गमन करता है। सन्मार्ग द्वारा अर्थोपार्जन करने वाला व्यक्ति दीर्घजीवी तथा समाज में सम्माननीय होता है।

वैदिक वाङ्मय भी अर्थ के सम्बन्ध में स्पष्ट मत प्रकाशित करता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त की प्रथम ऋचा में अर्थ की आशीर्वाद रूप में अभिलाषा की गई है। अग्निदेव हमें पुष्टिकारक धनों को प्रदान करें ऐसा कहा गया है। पुष्टिकारक धन ही मनुष्य को भौतिक तथा आध्यात्मिक उभय दृष्टियों से परिपूर्ण बनाता है–

**अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्, होतारम् रत्नधातमम्**

**अग्निनारयिमश्नवत्षोषमेव दिवेदिवे।**[264]

ऋग्वेदीय मन्त्रों में दैवीय  शक्तियों के गुणगान के साथ–साथ संस्तवनकर्ता यजमान के धन–धान्य से परिपूरित होने की भी प्रार्थना करता है।

---

[263] नारद स्मृति, 2.17

[264] ऋग्वेद, 1.1.1

शुक्ल यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में पूर्णाहुति मन्त्रों में मनुष्य की आध्यात्मिक एवम् भौतिक समृद्धि की अभिलाषाएँ प्रकट हुई है।

**वित्तञ्चमे वेद्यं च मे भूतञ्च मे भविष्यञ्च मे सुगञ्च मे सुपथ्यञ्च म ऋतवञ्च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तञ्च मे क्लृप्तश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।**

**व्रीइयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च म तिलाश्चमे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मे ऽवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।**

**अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पयश्चश्मे हिरण्यञ्च मे ऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।**

**स्वर्ण धर्मः स्वाहा। स्वर्णार्कः स्वाहा। स्वर्णशुक्रः स्वाहा। स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा। स्वर्ण सूर्यः स्वाहा।**[265]

भारतीय संस्कृति पितरों को भी देवतुल्य प्रतिष्ठित करती है, श्राद्ध कर्म में पूजन की पूर्णता के समय आशीर्वाद भी इस प्रकार निवेदित है–

**दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम्। अभिवर्द्धन्ताम् वो दातारः।।**

**सन्ततिर्नोऽभिवर्द्धताम्। अभिवर्द्धतां वः सन्ततिः।।**

**श्रद्धा च नो मा व्यगमत्। माव्यगमद् वः श्रद्धा।।**

**अन्नं च नो बहुभवेत्। भवतु वो वह्वन्नम्।।**

**बहुदेयं च नो अस्तु। अस्तु वो बहुदेयम्।।**

---

[265] शु. यजु. 18.1–12.–13.50

**अतिथींश्च लभामहे। लभतां वो ऽतिथयः।।**

**याचितारश्च नः सन्तु। सन्तु वो याचितारः।।**

**एता आशीषः सत्याः सन्तु। सन्त्वेता आशिषः सत्याः।।**[266]

भारतीय सांस्कृतिक प्रबन्धन के अन्तर्गत विविध प्रकार के व्रत, दान, अनुष्ठानों आदि का सम्पादन भी धन ऐश्वर्य प्राप्ति के उद्देश्यों से संयुक्त है। अर्थ की महत्ता के वर्णन के क्रम में विभिन्न देवी–देवताओं की उपासना का वर्णन भी अपेक्षित है, यथा–

**या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः**

**पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।**

**श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा**

**तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्।।**

**ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां**

**तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।**

**धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा**

**येषां सदाभ्युदयदाभवती प्रसन्ना।।**[267]

भारतीय धर्मशास्त्रीय चिन्तन के अनुसार धर्म को, अर्थ का तथा अर्थ को धर्म का पर्याय बताया गया है। धर्मानुकूल अर्थ मनुष्य की समृद्धि का कारक होकर मनुष्य जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। महाभारत के वन पर्व में कहा गया है कि–

**सर्वथा धर्ममूलोऽर्थो धर्मश्चार्थ परिग्रहः।**

**इतरेतरयोर्नीतौ विद्धि मेघोदधी यथा।।**[268]

इस प्रकार वैदिक वाङ्मय आर्थिक प्रबन्धन की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करता है। अर्थार्जन किस प्रकार किया जाना चाहिये? उपार्जित धन के उपयोग की पद्धति क्या होनी चाहिये? तथा

---

266 गायत्री पुरश्चरण पद्धति, पृ 67–68

267 दुर्गासप्तशती, 4–5–15

268 महा. वनपर्व 33.29

आवश्यकता से अधिक अतिरिक्त धन का सामाजिक हितों में नियोजन इत्यादि विषयक प्रश्नों के उत्तर समस्त शंकाओं का समाधान भारतीय वाङ्मय में सहज ही उपलब्ध है।

अथर्व वेद में वर्णित वाणिज्य सूक्त इस आर्थिक प्रबन्धन की अवधारणा को स्पष्टतः परिलक्षित करता है।

ऋषि कहते हैं–''मैं वाणिज्य करने वाले इन्द्र की प्रार्थना करता हूँ कि वह हमारे अग्रगामी बनें, हमें धन प्रदान करें, दस्यु व तस्करों को हमारे मार्ग से दूर करें।''

व्यापार करने के मार्ग दूध व घी से भरपूर हों तथा व्यापार को लाभ पहुँचे। मैं अनेक व्यापारों में सिद्धियाँ प्राप्त कर लाभ प्राप्त करना चाहता हूँ। हम वाणिज्यार्थ बहुत दूर आ गए हैं, यहाँ हम जो व्यापार करें उसमें हमें बहुत लाभ हो, विक्रय में भी बहुत धन मिले, प्रत्येक व्यवहार में हमें लाभ प्राप्त हो। मैं मूलधन से व्यापार करके बहुत लाभ प्राप्त करना चाहता हूँ, अतः जितने धन से मैं यह व्यापार प्रारम्भ कर रहा हूँ, वह धन मेरे कार्य के लिए पर्याप्त होवे। व्यापार करके मैं बहुत धन कमाना चाहता हूँ, अतः धन लगाकर उससे जो व्यवहार करना चाहत हूँ,उसमें मेरी रूचि लाभ होने तक स्थिर होवे। हे प्रभो! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ, तू संतुष्ट होकर हमारे आत्मा, प्राण, प्रजा, गौ आदि पशुओं की रक्षा कर।

हे प्रभो! तेरी कृपा से हम बहुत धन पुष्टि और अन्न प्राप्त करेंगे, बहुत आनंदित होंगे और कभी दुःख से त्रस्त न होंगे–

**इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।**
**नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्**
**ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति।**
**ते मा जुषन्ता पयसा घृतने यथा क्रीत्वा धनमाहराणि।**
**इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय।**
**यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्।**

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्।

शुनं नो अस्त प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु।

इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।

तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्नें सातघ्नो देवान्हविषा नि षेध

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।

तस्मिन्म इन्द्रो रूचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः।

स नः प्रजास्वात्मसु  गोषु प्राणेषु जागृहि

विश्वाहा ते सदुमिद्भरेमाश्वयेव तिष्ठते जातवेदः।

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम।।[269]



[269] अथर्व वेद 3.15.1–8